# सूर्यनाथ सिंह

14 जुलाई, 1966 ई. को सूर्यनाथ सिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के सवना ग्राम में हुआ। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हैं—जिनमें 'चलती चाकी' (उपन्यास); 'नींद क्यों रात भर आती नहीं', 'शेर सिंह को मिली कहानी', 'बर्फ के आदमी', 'बिजली के खम्भों जैसे लोग', 'सात सूरज सत्तावन तारे', 'कुछ रंग बेनूर' (कहानी संग्रह); 'धधक धुआँ-धुआँ' बाल साहित्य तथा बांग्ला से हिन्दी अनुवाद भी किया है। बाल साहित्य पर उन्हें हिन्दी साहित्य अकादमी दिल्ली का बाल एवं किशोर साहित्य सम्मान मिला, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान का यशपाल सम्मान, प्रेमचन्द पुरस्कार, राजवल्लभ साहित्य सम्मान आदि। दैनिक 'जनसत्ता' में एसोसिएट एडीटर के रूप में कार्यरत हैं।

## कथा सार

'मंडन मिसिर की खुरपी' सूर्यनाथ सिंह की एक मौलिक और प्रमुख कहानी है। इस कहानी में मंडन मिसिर के चरित्र को चित्रित करते हुए वृद्ध व्यक्ति के अकेलेपन और उसके जीवन की पीड़ा को दर्शाया गया है। यह कहानी वृद्ध विमर्श के साथ-साथ महानगरीय बोध को व्यक्त करती है। वर्तमान नई पीढ़ी भौतिकवादी प्रभावों से इतनी प्रभावित है कि वह अपने बुजुर्गों के प्रति किसी भी प्रकार से प्रतिबद्धता नहीं जता पाती है। मंडन मिसिर की यही स्थिति है। जिसने जीवन भर अच्छे कर्म किए, गाँव का मार्गदर्शन किया, अपनी तीन लड़कियों और एक लड़के की अच्छी तरह से परवरिश की। बच्चों का विवाह किया। अब उनकी स्थिति यह है कि वह अपने बेटे और बहू से दूर अकेले हैं। बहू चाहती है गाँव की खेती बेचकर बेंगलूर में घर खरीदे। इस बात को लेकर बेटे और बहू में अनबन है। यह अनबन न हो इसलिए मंडन मिसिर अपनी खेती बेचकर बेटे और बहू को पैसे दे देते हैं। बेटे और बहू के बीच की अनबन की चर्चा जब गाँव में होती है तब वह गाँव छोड़कर अयोध्या चले जाते हैं। लेखक ने मंडन मिसिर के माध्यम से ऐसे व्यक्तित्व का

चरित्र चित्रण किया है, जो अपने जीवन का आखिरी समय घर में अकेले रहने की बजाय किसी मन्दिर में जाकर जीवनयापन करना चाहता है। वृद्ध विमर्श इस कहानी का मुख्य विषय है। यह कहानी जीवन के अनेक पक्षों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है।

# मंडन मिसिर की खुरपी

मंडन मिसिर की खुरपी कहीं खो गई है। वे सुबह से उसे ढूँढ़ रहे हैं। देखते-देखते पूरे गाँव में चर्चा है। हर कोई दूसरे से पूछ रहा है, देखी क्या मिसिर महाराज की खुरपी कहीं। कोई अपने बेटे से पूछ रहा है, कोई अपनी बीवी से। दो-एक लोग मिसिर महाराज के घर-आँगन का कोना-अन्तरा भी देख आए हैं। खुरपी कहीं नहीं है।

किसी ने कहा, ''अरे भुलक्कड़ हो गए हैं मिसिर महाराज, परसों नहाये और धोती नल पर छोड़ आए। कल घर में ढूँढ़ रहे थे। कोई जाके खेत में देखो। कल शाम को वहीं तो नहीं छोड़ आए खुरपी।'' सुना तो जोगिन्दर का छोटा बेटा भागा-भागा खेत में गया। पीछे-पीछे दो-तीन बच्चे और गए। छान मारा सारा खेत, मगर खुरपी कहीं नहीं मिली।

मंडन मिसिर बड़बड़ाये जा रहे हैं, ''अरे आलू की खेत में मोथा बहुत उग आया है। सोहाई नहीं होगी तो बइठबे नहीं करेगा। सारी मेहनत बरबाद चली जाएगी। आलू को चाहिए भुरभर माटी, खर-पतवार से खाली।...मगर पता नहीं, ससुरी खुरपिया कहाँ चली गई। कल संझा को सोहाई करके लाये थे।...खाने-पीने की चीज तो है नहीं कि कौनो कुकुर-बिलार उठा ले जाएगा।...''

किसी ने कहा, ''यहीं कहीं होगी, मिल जाएगी। तब तक हमरी खुरपी से सोहाई कर लीजिए।''

मगर मंडन मिसिर उखड़ गए, ''तुम हो बुड़बक। का हो?''

लोग जानते हैं कि यह मिसिर महाराज का तकिया-कलाम है! जब भी उन्हें किसी की बात का खंडन या अपनी बात का मंडन करना होता है, वे यह तकिया-कलाम जरूर बोलते हैं। जब तक उनके इस तकिया-कलाम का जवाब न दो, वे आगे नहीं बढ़ेंगे। जैसे नाटकों में फ्रिज अवस्था होती है, बातचीत अपनी जगह ठहरी रहेगी। जवाब भी सबको रटा हुआ है। जवाब तय है, इसलिए किसी दूसरे ने जवाब दिया, ''बुड़बक।''

''हाँ, ऊ खुरपी हाथ लगी थी मेरे। हर चीज का अभ्यास होता है। आदत पड़ जाती है। जिसकी आदत न हो, उस औजार से काम करना मुश्किल होता है। कभी

किसी तबलची को दूसरे तबलची का तबला बजाते देखे हो? नहीं न...। दूसरी खुरपी कैसे चलाऊँगा?..बड़े मन से बनवाकर लाया था लल्लन लोहार से...'' वे बड़बड़ाते हुए फिर से घर में घुस गए थे, ढूँढ़ने।

भीड़ धीरे-धीरे छँटनी शुरू हो गई। मगर फुसफुस जारी रही। उधर मंडन मिसिर अपनी खुरपी ढूँढ़ने गए और इधर गाँव अपनी गलचउरन में मशगूल हो गया।

गलचउरन शुरू हुई तो उसका अन्त भला कहाँ होना था। तरह-तरह की बातें, तरह-तरह के विचार। कुछ लोग फुसफुस करते बतिया रहे थे, ''अब नहीं जीएँगे ज्यादा दिन। सनक गए हैं। दिमाग साथ नहीं दे रहा मिसिर महाराज का। अब तो यह भी याद नहीं रहता कि खाना खाया है कि नहीं। बस, कोई-कोई इस्लोक जपते रहते हैं। नहाने जाते हैं तो घंटा भर नहाते रहते हैं। मन्दिर में पूजा करने बैठे तो दोपहर ढलने तक बैठे रहते हैं। चूल्हा पर खिचड़ी बइठा के भूल जाते हैं। जलने की महक आती है तो भागते हैं उतारने। कभी जली खाते हैं, कभी कच्ची-पनछुछुर उतार के खाने बैठ जाते हैं। और अब पहले जैसी खुराक भी नहीं रही। जजमुनिका में जाते हैं, मुट्ठी भर भात चाहे दो पूड़ी खा के उठ जाते हैं।...खेत में पौधों से पता नहीं क्या-क्या बतियाते रहते हैं। न किसी के घर जाना है, न किसी के पास उठना-बैठना। पहले छुट्टी पर जाते थे, चार-छह लोगों से मिलना-जुलना, बोलना-बतियाना होता था तो मन फरफर रहता था। अब ऊ सब भी छूट गया। जिन्दगी भर खेत में खरे नहीं उठाये, अब दिन भर मोथा उखाड़ते रहते हैं...सदमा लगा है कोनो।''

''कोनो का, औलाद का सदमा है। सब खेती-बारी बेच के दे दिये बेटा को। मगर बेटा अपना न हो के बहू की सुनता है। मिसिर महाराज दुनिया भर में ज्ञान बघारते रहे, मगर हार गए अपनों से।

''ऊ कहावत है न, मोर अपने पंख पर चाहे जितना घमंड कर ले, औकात समझ आती हैं अपने पाँव देख के। वही मिसिर महाराज के साथ हुआ है। कमाए इज्जत दुनिया भर में, मगर बेइज्जत हुए अपने घर में।''

''जो हो भइया, ई दशा उनकी देखी नहीं जाती। बिदवान आदमी हैं। आफत-बिपत किस पर नहीं आती। मगर आदमीयत इसी में है कि दु:ख-तकलीफ में एक-दूसरे के काम आओ।...खबर करनी चाहिए मिसिर महाराज की बेटियों को। बेटा-बहू मानें न माने, बेटियाँ जरूर भागी आएँगी बाप को सँभालने।

''का कह सकते हैं भइया। जमाना बहुत खराब है। आदमी जिनिगी भर बेटे को पाल-पोस के बड़ा करता है इस उम्मीद में कि ऊ बड़ा होके उसके बुढ़ापे का सहारा बनेगा। इसी घमंड में बेटियों को कमतर मान बैठता है।...फिर, शादी के बाद बेटियों का घर-परिवार है, वे उनसे बँधी हैं। वे आएँगी कि नहीं, कौन कह सकता है। सास-ससुर-मनसेधू सबका मुँह जोहना पड़ता है।...जब बेटा साथ नहीं दे रहा तो बेटियों का क्या भरोसा।''

इस तरह बातों का सिलसिला चलता रहा।

मंडन मिसिर अपनी खुरपी ढूँढ़ रहे थे।

जिन्होंने चार महीने पहले मंडन मिसिर को देखा होगा उन्हें आज उनकी दशा देख के हैरानी होगी। धीर-गम्भीर। बात-बात पर शास्त्र-पुराण के किस्से। किसी पुराण का श्लोक और मानस की चौपाई। लक-दक धोती। घुटने से नीचे तक कुर्ता और गले में चौड़ी पट्टी का गमछा। माथे पर चन्दन का गाढ़ा तिलक। बेवजह उन्हें किसी ने हँसते, ही-ही करते नहीं देखा। इसका मतलब यह नहीं कि वे हँसते या किसी बात पर बिगलित नहीं होते थे। कब कोई श्लोक सुनाते-सुनाते, कोई बात कहते-कहते हँस दें, पता नहीं। लोग हैरान कि इसमें हँसने की कौन-सी बात थी। मगर किसी बात पर जब लोग ठट्टा मार के हँस रहे हों, मंडन मिसिर गम्भीर हुए दिखते थे। लोग हैरान कि उन्हें हँसी क्यों नहीं आई। इसी तरह कोई बात कहते-कहते या कोई चौपाई सुनाते-सुनाते कब उनकी आँखें भर आएँ, पता नहीं। लोग हैरान कि इसमें रोने की क्या बात थी। मगर लोगों की हैरानी की क्या परवाह। मंडन मिसिर को किस बात पर हँसना चाहिए, किस बात पर नहीं, यह उनका व्यक्तिगत मामला है। वे दूसरों के लिए क्यों हँसें या दूसरों की हँसी में अपनी हँसी क्यों मिलायें। जरूरी नहीं कि जब वे हँसें तो दूसरे भी हँसें। वे रोयें तो दूसरे भी रोने लगें।

उनके इस मिजाज के चलते कुछ लोग उन्हें सनकी समझते थे। कुछ तो यहाँ तक कह देते कि बाप पर गए हैं। मगर मंडन मिसिर को इसकी भी क्यों परवाह होने लगी।

मगर इन सबके बावजूद एक बात सच थी कि पूरे इलाके में उनका बहुत सम्मान था। सुबह-शाम चट्टी पर घंटा-दो घंटा दुब्बर साव की दुकान पर बैठना, अखबार पढ़ना और गाँव-गिराँव, देश-विदेश, जीवन-जगत् के बारे में चर्चा करना उनका शगल होता था। किसी भी विषय पर लोग उनकी बातें बड़े ध्यान और रुचि के साथ सुनते-गुनते थे। किसी के घर में कोई रगड़ा-झगड़ा हो, वेद-पुराण की बातों से समझा-बुझाकर शान्त कर देते। पैसा, परिवार, बहू-बेटे, कैसी भी उलझन लेकर कोई मंडन मिसिर के पास बैठता, वे उसका हल निकाल देते। ज्योतिष और कर्मकांड के विद्वान। भाषा और बातें इतनी साफ, आवाज इतनी बुलन्द कि एक बार किसी के कान में उनकी आवाज पड़ जाये तो वह पूरी बात सुने बिना हटता नहीं था।

मगर कभी पैसे के लिए न तो किसी की कुंडली देखी, न बनाई। किसी के घर दक्षिणा के लोभ में पूजा-पाठ कराने नहीं गए। क्या मजाल कि किसी श्लोक का गलत उच्चारण उनके मुँह से निकल जाये। किसी पूजा विधि में कोई त्रुटि रह जाये। हर कोई चाहता कि उनके घर का पूजा-पाठ मंडन मिसिर करायें। शादी-विवाह के दिनों में उन्हें अपने यहाँ बुलाने के लिए छीना-झपटी जैसी स्थिति होती। हर कोई

चाहता कि उनके बेटे-बेटी का विवाह मंडन मिसिर ही करायें। मगर वे जाते अपनी मरजी से। अगर कभी किसी ने गलती से भी दक्षिणा के बारे में पूछ लिया तो उसकी खैर नहीं। वे उसके यहाँ जाते ही नहीं। इसलिए विदाई के समय लोग चुपके से, अपनी श्रद्धा और क्षमतानुसार उनके झोले में पूड़ी-मिठाई के साथ कपड़े-लत्ते, रुपया-पैसा वगैरह रख दिया करते।

मंडन मिसिर को यजमानी विरासत में मिली थी। उनके दादा अगनू मिसिर जाने-माने ज्योतिषी और कर्मकांडी थे। कोई-कोई तो पुराने लोगों से सुने के आधार पर अब भी कहता है कि मंडन मिसिर के दादा जितना बड़ा ज्योतिषी आज तक नहीं हुआ। वे जो भविष्यवाणी कर देते वह विधाता की खींची रेख होती। अटल, अमिट। उनका कहा होकर ही रहता।

हालाँकि तब अंगरेजी राज का जमाना था। राजे-रजवाड़ों के तम्बू उखड़ गए थे, मगर राजाओं की शान खतम नहीं हुई थी। जैसे आजादी के इतने साल बाद भी कहीं-वहीं राजाओं के वारिस पुरानी अकड़ और शान से जीते हैं, उसी तरह इस इलाके का राजा था। बड़ी शान-शौकत वाला। खुश हो तो पूरा राज लुटा दे, नाराज हो तो खाल खींच ले। एक बार अगनू मिसिर ने उसके बारे में कोई भविष्यवाणी कर दी थी वह सही निकली। तबसे राजा उनका ऐसा भक्त हुआ कि उनसे पूछे बगैर कोई काम ही नहीं करता। शादी-विवाह, मुंडन-नकछेदन, तीरथ-वरत, तीज-त्योहार कोई मौका हो, अगनू मिसिर का उसके यहाँ होना जरूरी था। वह अंगनू मिसिर से इतना खुश हुआ कि एक सौ एक बीघा खेत उनके नाम कर दिया। यह जो महल जैसा घर है न मंडन मिसिर का, वह अगनू मिसिर को राजा ने ही बनवा के दिया था।

अगनू मिसिर ने मंडन मिसिर के बाप अगस्त मिसिर को भी कम नहीं पढ़ाया-सिखाया, मगर जिसका जितना खप्पर उसको उतना दान। स्वभाव से क्रोधी और झक्की थे अगस्त मिसिर। बात-बात पर शाप देने की धमकी देते। यजमानी उनके बस की थी नहीं। लोग भी उनसे दूर ही रहने में भला समझते। पता नहीं क्या रोग हुआ कि चल बसे भरी जवानी में। मंडन मिसिर आठ महीने के थे। बाप की तो उनको याद भी नहीं। फिर अगनू मिसिर ने मंडन मिसिर को पढ़ा-लिखा के तैयार किया। बनारस भेजा पढ़ने। पढ़-लिख तो ठीक गए, मगर निकले अफलातून। अपनी रौ में रहने वाले। विद्या तो खूब पायी, मगर दुनिया का व्यवहार कतई नहीं सीख पाये। खेती-बारी में रुचि नहीं, पैसा-कौड़ी की चिन्ता नहीं। बस कपड़ा-लत्ता फिट-फाट रहे, भोजन मिलता रहे। दिन भर किताबें पढ़ना, चट्टी पर बैठ के बातें करना, यही उन्हें भाता था। दुनिया कहाँ जा रही है, क्या कर रही है, उससे कोई मतलब नहीं। दादा की कमाई सम्पत्ति थी, ठाठ से जिन्दगी कटती रही। ज्यादा हाँव-हाँव पट-पट की जरूरत नहीं थी।

मगर अगनू मिसिर गुजरे तो यजमान का बोझ इनके सिर पर आ गया। निभाते रहे जैसे-तैसे। अपने ढंग से। सारा खेत बँटाई पर देने लगे। जो जितना दे देता, उसी में खुश। कभी किसी से पैसा-अनाज के लिए ठकडेनी नहीं की। इस स्वभाव के चलते लोग ठगते भी खूब थे उनको। कोई बहाना करता कि फसल जंगली जानवर खा गए, कोई कहता समय से सिंचाई न होने के कारण पैदावार ठीक नहीं हुई, कोई बाढ़ में बह जाने का तर्क देता तो कोई सूखे में सूख जाने का। इस तरह जिसकी जितनी इच्छा होती बँटाई का अनाज उन्हें दे जाता था। उन्होंने कभी किसी को डाँटा-फटकारा नहीं। जो जितना दिया, उसी में खुश। मगर इस तरह भी उनके पास इतना अनाज जमा हो जाता कि गेहूँ, धान, चना, चावल बेच के खुशहाल रहते। दो प्राणी का खर्च ही कितना था। बेटे की पढ़ाई-लिखाई भी उसी से चलती रही।

इनकी तीन बेटियाँ, एक बेटा हुआ। बेटा सबसे छोटा। बेटियों की शादियाँ खूब देखभाल के बड़े घरों में की। हर बेटी की शादी में खेत बेचे, खूब खर्चा किया। दान-दहेज में कोई कमी नहीं की। कोई टोकता तो कहते, "का करेंगे ई खेती-बारी सहेज के। बेटियों के हिस्से का बेच के उनको दे रहा हूँ। बेटे के हिस्से का रखेंगे। और अपने को क्या, बामन का धन केवल भिच्छा।" और हँस देते। गाँव से भाग के कोलियरी में कुलीगीरी करने, दिल्ली-मुंबई में रेहड़ी-पटरी भाजी-तरकारी बेचने गए और पैसा बचा के लौटे तमाम जातियों के लोग मंडन मिसिर का खेत खरीद के खेतिहर बन गए। गाँव-जवार में जैसे ही किसी के पास कुछ पैसा होता, मंडन मिसिर के खेत खरीदता।

बेटे को कभी ज्योतिष-कर्मकांड पढ़ाने की नहीं सोची। जो पढ़ना चाहता था, वही पढ़ने दिया। वह निकला भी होनहार। बंगलोर से इंजीनियरिंग की और वहीं नौकरी पर लग गया। उसकी माँ गुजर गई बेचारी उसकी शादी से पहले ही, देख नहीं पायी बहू का मुँह। मंडन मिसिर अकेले पड़ गए। सोचा, बेटे की शादी कर दें। लोगों ने समझाया कि ऐसी बहू लाएँ जो गाँव में रह के उनकी सेवा करे। मगर उनका तर्क था कि अपने सुख के लिए बेटे को दुःख क्यों। अब अपनी जिन्दगी ही कितने दिन की। बहुत देखभाल के एक इंजीनियर की बेटी से रिश्ता तय किया था। दान-दहेज नहीं लिया। सवा रुपये से तिलक कराया था बेटे का। लड़की पढ़ी-लिखी थी। स्कूल में पढ़ाती थी। मंडन मिसिर ने कहा, कन्या तो खुद सोना होती है, उसे घर लाने के लिए दान-दहेज क्यों। बेटियों की शादी की तो तर्क अलग, बेटे की शादी की तो अलग।

बेटे की शादी के बाद लोगों ने समझाया कि वे बेटे-बहू के साथ बंगलोर चले जायें। इस तरह इस उम्र में अकेले रहना ठीक नहीं। मगर मंडन मिसिर कहते—नया जमाना है, नये जमाने की अपनी तकलीफें हैं। बेटा-बहू दोनों नौकरी करते हैं।

उनकी अपनी व्यस्तताएँ हैं। बड़े शहर की समस्याएँ अलग हैं। उनके साथ रहने का मतलब है उन पर बोझ बनना। फिर मेरा भी मन वहाँ जाकर कहाँ लग पाएगा। यहाँ तो चार लोगों के बीच बैठ के बोल-बतिया लेता हूँ। वहाँ घर में बैठे-बैठे दिन भर सड़ता रहूँगा। यहाँ पुश्तैनी मकान है, कुछ खेती-बारी है, यहीं रहूँगा। लोग उनका तर्क सुनकर चुप रह जाते।

"मगर अब तो खेती-बारी भी कहाँ रह गई। बेटियों की शादी के बाद पैंतालीस बीघे खेत बचे थे। उनमें से पाँच बीघे रखकर सारा बेच कर पैसा बेटे-बहू को दे दिया।"

कोई कहता, "मिसिर महाराज खुद नहीं जा रहे बंगलोर तो बेटे-बहू ही जिद करके, जबरदस्ती उन्हें ले जाते। ये यहाँ खुद खिचड़ी बनाते-खाते हैं, अच्छा थोड़े न लगता है। इस उमर में आदमी को ज्यादा देखभाल की जरूरत होती है। मगर हैरानी की बात है कि बेटे-बहू को इनकी फिक्र नहीं। दो महीना पहले बेटा आया था। खेत बेचने से मिले पैसे लेके चला गया। एक बार भी नहीं कहा कि पिताजी आप हमारे साथ चलिए।..."

"इसी सदमा से तो सनक गए हैं मिसिर महाराज।"

"अरे नहीं, सनक तो पहले ही गए थे। लबेद बतियाने लगे थे।..."

"अरे नहीं।"

"अरे हाँ।"

"कइसे?"

"हम खुद सुने हैं।"

"का?"

"देखो, राजबली यादव को तो जानते हो। उसका दामाद मर गया पिछले साल। सीमा पर लड़ते हुए। गौना हुए दो महीने हुए थे। राजबली बेटी की चिन्ता लेके बैठे थे मिसिर महाराज के पास चट्टी पर। हम भी वहीं थे। मिसिर महाराज समझा रहे थे राजबली को कि बेटी की दूसरी शादी कर दो।"

"आँय!"

"हाँ। पता नहीं कौन-कौन इस्लोक पढ़ के सुना रहे थे। कह रहे थे कि बेटी तो सोना होती है। उसकी कोई औलाद नहीं है। कर दो शादी कहीं। इस तरह जवानी में विधवा रखना पाप है किसी लड़की को!...बताओ ई लबेद हुआ कि नहीं?"

गाँव में फुसफुस चलती रही। तरह-तरह के अनुभव। तरह-तरह की बातें।

उधर मंडन मिसिर खुरपी ढूँढ़ रहे थे। पूरा बिस्तर उलट-पलट डाला। पोथी-पतरा, ठाकुर जी की पिंडी तक उलट-पलट के देख लिया। मगर खुरपी नहीं मिली। मिसिर बड़बड़ाये जा रहे थे।

गाँव फुसफुस करता सो गया था। मगर जो फाँस मिसिर महाराज के मन में फँसी थी, उसकी कसक वही जानते थे।

गए थे पाँच महीना पहले बंगलोर। बेटे के पास। पहिलौठी बेटी हुई थी उसकी। शादी के दो साल बाद। उसी को देखने गए थे मिसिर महाराज। खूब सारा भेंट-उपहार ले के। पोती का मुँह देख के बड़े निहाल हुए थे। मगर तभी बहू का असली रूप भी देखा।

दो दिन हुए थे उन्हें वहाँ गए। पोती को गोद में लिए दिन भर खेलते-पुचकारते रहते थे। उसी में तीसरे दिन बहू छेड़ बैठी बात जमीन-जायदाद की, "देखो। पिताजी, हम दोनों नौकरी करते हैं। लोगों को लगता है कि खूब मौज में रहते हैं। मगर असलियत तो हमीं जानते हैं। दोनों की तनखाह मिला के मुश्किल से खर्चा चल पाता है घर का। दो साल हो गए शादी के। इतनी बचत नहीं हो पायी है कि एक गाड़ी भी खरीद सकें। किराए के घर में रह रहे हैं। पैसा नहीं है कि कहीं अपना घर बुक करा सकें। बुकिंग के लिए घर की कीमत का कम से कम पन्द्रह परसेंट देना पड़ता है। वह भी देने भर का पैसा नहीं है। मैंने तो इनसे कहा कि पिताजी से माँग लो। गाँव में कुछ खेत बेच दो। मगर ये हैं कि सुनते ही नहीं। आदर्श बघारते हैं।..."

"अरे ई बहुत मुँहदुब्बर है। बचपन से आज तक कुछ नहीं माँगा मुझसे। संकोच करता है।...गाँव की सारी खेत-बारी तुम्हीं लोगों की तो है बेटा। घर बनवाना है तो बनवाओ। हम जानते हैं कि तुम अब गाँव में तो रहोगे नहीं। जहाँ सुविधा हो रहो।...गाँव जाते ही पैसों का इन्तजाम कर दूँगा। कितने पैसों की जरूरत है?" मिसिर महाराज ने बहू को समझाया था।

"पिता जी, चालीस-पचास लाख से नीचे में तो यहाँ घर कोई मिलता नहीं। इसके लिए पन्द्रह परसेंट पैसा भर भी दें तो बीस साल तक पैंतीस-चालीस हजार रुपये महीने की किश्त भरनी पड़ती है। तब कहीं जाकर घर अपना होता है। मगर आगे तो खर्च और बढ़ने हैं। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, दूसरे खर्चे। सिर्फ घर की किश्त चुकाते रहेंगे तो खाएँगे क्या। फिर इतने साल किसने जिन्दगी देखी है। भगवान न करे, बीच में कुछ हो-हवा गया तो घर बैंक का। बच्चे सड़क पर दिन गुजारेंगे। इसलिए मैं कहती हूँ, जो करना है, एकमुश्त करो। बाद की झंझट क्यों रखनी।..."

इतना सुनना था कि बेटा बीच में कूद पड़ा, "पिताजी, समझदारी इसमें नहीं कि खर्चे के मुताबिक कमाई बढ़ाने की सोचें। समझदार वही है जो कमाई के मुताबिक खर्चे को सन्तुलित बनाने की सोचे।...आज खेत बेच के घर और गाड़ी खरीद लेंगे। फिर कल का क्या!...गाँव की सम्पत्ति हमने तो जुटायी नहीं। कई पीढ़ियों से चली आ रही है। उसे बचा के रखेंगे तो आगे कभी जिन्दगी में परेशानी आएगी, वही तो सहारा बनेगी। उसे अभी खत्म कर देने का मतलब है अपना हाथ

काट लेना।...अभी उमर ही क्या हुई है, हमारी। कमाएँगे। पहले लोग रिटायरमेंट के बाद अपना घर बनवा पाते थे। अब वो स्थितियाँ नहीं रहीं। दो ही साल तो हुए हैं शादी के। ऐसी क्या हड़बड़ी है। रह लेंगे दो-चार साल और किराए के मकान में। आगे यही स्थितियाँ तो नहीं रहनी हैं। जुटा लेंगे सब सुख-सुविधाएँ।...''

मंडन मिसिर पहली बार अपने बेटे को गौर से देख रहे थे। हैरानी हो रही थी कि यह उनका ही बेटा है। इस बेटे को उन्होंने पहले कभी देखा ही नहीं। अपने खून से ही इतना दूर रहे वे इतने सालों तक! बेटे की बातें सुनते हुए उन्हें अफसोस हो रहा था अपने ऊपर। मगर मन ही मन गर्व हो रहा था कि संस्कार उसमें खानदानी हैं।

उन्होंने बहू को समझाने की कोशिश की, ''बात तो सही है बेटा। गाँव की जमीन-जायदाद तुम्हारी है। उसका चाहे जैसे, जब इस्तेमाल करो। मैं जाते ही तुम लोगों के नाम वसीयत लिख दूँगा। मगर तय कर लो आपस में तुम दोनों कि सही क्या है और करना क्या है। मिलजुलकर ही फैसले होने चाहिए बेटा।...''

''पिताजी, समस्या कोई नहीं है। बस, कमाई और खर्च के बीच तालमेल की है। यह भला कहाँ की समझदारी हुई कि कमाई दस हजार रुपये महीने की है और साड़ी खरीद लो बारह हजार रुपये की। शौक पूरे करना बुरी बात नहीं है, मगर दिखावे का कोई अन्त होता है क्या? कमाते हम हैं, तो खर्चे दूसरों को ध्यान में रखकर क्यों करें! हमें अपने जीने का तरीका, अपनी जरूरतें खुद तय करनी हैं। दूसरों की हैसियत को ध्यान में रख के करेंगे तो भला कहाँ टिक पाएँगे। समस्या बस यही है। आप बिलकुल चिन्ता न करें हमारी।...'' बेटे ने मिसिर महाराज को समझाया।

मगर बहू उखड़ गई। तेज-तेज बोलने लगी। जैसे दौरा पड़ा हो, ''पता नहीं किन गँवार लोगों के पल्ले पड़ गई मैं। मैं कहती कुछ और हूँ, ये समझते कुछ और हैं। दुनिया देखी ही नहीं जैसे। हर बात में आदर्श। हकीकत से कोई वास्ता ही नहीं। जैसे हवा में से सब कुछ आ जाएगा। घर की कीमत रोज बढ़ जाती है। आज नहीं खरीदेंगे तो कल जैसे कुबेर का खजाना खुलने वाला है। आसमान से पैसे बरसने वाले हैं। एक बेटी हो गई है। बड़ी होगी तो शादी-विवाह का खर्चा। घर के दैनिक खर्चे भी कम तो होंगे नहीं। मगर इनको लगता है, सब हवा में से आ जाएगा।...मैंने शुरू में ही विरोध किया था। पापा को समझाया था कि इस आदमी के साथ निभ नहीं पाएगी मेरी। मगर पट्टी बँधी थी आँखों पर उनकी। उन्हें संस्कार नजर आ रहे थे। नौकरी नजर आ रही थी। जब आदमी में व्यावहारिक ज्ञान ही न हो तो इन सब चीजों का क्या मतलब। दुनिया कहाँ से कहाँ जा रही है, मगर यह आदमी एक तबेले में जिन्दगी गुजारने को तैयार है। न ओहदे की फिकर न बीवी की इच्छाओं की कद्र।...''

मिसरी महाराज की बहू - शैलजा।

"शैलजा, अब तुम अपनी हद पार कर रही हो। पिताजी से ऐसी बेतुकी बातें करने का क्या मतलब है। जो फैसले हम दोनों को करने हैं, उसमें पिताजी को घसीटने का क्या अर्थ है। हैरानी की बात है कि इतना कॉमन सेंस भी तुममें नहीं बचा।..." बेटे ने दाँत पीसते हुए प्रतिवाद किया।

इतना सुनना था कि बहू का दौरा और बढ़ गया। उसकी साँसें धौंकनी की तरह चलने लगीं। चेहरे पर घृणा के भाव छलक-छलक पड़ रहे थे। माथे की नसें तनी हुईं। उसने पहले तो अलमारी पर एक मुक्का जमाया, फिर फर्श पर पाँव पटककर कोसना शुरू कर दिया। ऐसी-ऐसी बातें कि सुनकर मंडन मिसिर की छाती छलनी हुई जा रही थी। बेटे के चेहरे पर उभरी पीड़ा उनसे सहन नहीं हो पा रही थी।...अब उन्हें अहसास हुआ कि पिछले डेढ़ सालों में बेटा एक बार भी गाँव क्यों नहीं आया था।

मगर बड़ी मुश्किल से बहू को समझा-बुझाकर शान्त किया। बेटे को समझाया कि बहू बिलकुल सही कह रही है। तुम्हें इसकी बातों को मान देना चाहिए। घर की चिन्ता तो घरनी को ही होती है। उसकी बात मान लो।...

फिर अगले दिन की गाड़ी पकड़कर गाँव लौट आए थे। आते ही चारों ओर लोगों से कह दिया कि खेत बेचने हैं। दो-तीन महीना लग गया ग्राहक पटाने और ग्राहकों को पैसा जुटाने में। फिर पाँच बीघा रख के सारा खेत बेच दिया। बेटे को फोन किया कि आकर पैसा ले जाओ। वह आया, यहीं से पैसा अपने खाते में डलवाया और तीन दिन बाद चला गया।

हालाँकि इस पूरे घटनाक्रम को मिसिर महाराज अपने भीतर दबाये रहे। किसी से कोई चर्चा नहीं की। मगर गाँव की नाक बड़ी तेज है। उसने सूँघ ही लिया बेटे-बहू के बीच की अनबन को।

गाँव का यह सूँघना ज्यादा सालता रहा मिसिर महाराज को। वे लोगों से कटने लगे। छोड़ दिया चट्टी पर जाना, दुब्बर साव की दुकान पर उठना-बैठना, लोगों से बोलना-बतियाना। खुरपी लिए खेत में कुछ करते रहते। मगर फाँस फँसी थी, सो करकती रहती।

अगले दिन सुबह बालू की बहू को मिसिर महाराज की खुरपी दिख गई। मन्दिर के पास वाले सूखे कुएँ की जगत पर। वहीं बैठे होंगे मिसिर महाराज और भूल आए होंगे। उसने घर आकर ससुर को बताया। बालू खुरपी लिए खुशी-खुशी मिसिर महाराज के दरवाजे पहुँचा। आवाज लगाई। भीतर से कोई आवाज नहीं। दो-चार लोग और जुट आए। आवाजें दी गईं, मगर अनुत्तरित।

कोई घर के अन्दर जाकर देख आया। मंडन मिसिर घर में नहीं थे। बिस्तर खाली पड़ा था।

किसी ने कहा, दिशा-मैदान के लिए गए होंगे नदी की तरफ।

उनके आने का इन्तजार होने लगा। घंटा, दो घंटा। फिर शंकाएँ सिर उठाने लगीं। लोग मंडन मिसिर को ढूँढ़ने निकले। मगर कहीं नहीं मिले। खेत-खलिहान, बाग-बगीचा, मन्दिर सब देख लिया।...किसी ने कहा, कल रात को तो हम से बात करके ही सोने गए थे। किसी रिश्तेदारी वगैरह में भी जाने की चर्चा नहीं थी। गए कहाँ!

तरह-तरह की चर्चा, तरह-तरह के कयास, तरह-तरह की बातें।

करीब महीने भर बाद एक प्रत्यक्षदर्शी ने सूचना दी कि उसने मंडन मिसिर को दाढ़ी बढ़ाये, त्रिपुंड लगाये अयोध्या के एक मन्दिर में देखा है।